

## बुद्धकालीन राज्य

इस तथ्य के प्रमाण उपलब्ध है कि बुद्ध के समय तक भारत में एक पूर्ण साज-सज्जा युक्त राज्य की स्थापना हो चुकी थी<sup>109</sup> तथा जनपदीय जीवन की ऐसी नवीन प्रवृत्तियों का उदय हो रहा था जिनके परिणामस्वरूप मगध के

नेतृत्व में एक अखिल भारतीय साम्राज्य की स्थापना हुई। जनपद और महाजनपद जैसी शब्दावली के प्रयोग से बुद्धकालीन राज्य का भू-प्रादेशिक तत्व स्पष्ट होता है तथा पाणिनी के वर्णनों में जनपद अथवा भू-प्रदेश के प्रति जनसमुदाय के प्रेम से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि जनसमुदाय का एक निश्चित भू-प्रदेश पर निवास राज्य संगठन के अनिवार्य अंग के रूप में प्रतिस्थापित हो चुका था। प्रसिद्ध भू-प्रादेशिक राज्यतंत्रों के रूप में कौशल और मगध के नाम उल्लेखनीय हैं जिनमें राज्य के सभी अंग स्पष्टतः विद्यमान थे।

जातक कथाओं में प्राप्त विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि ज्येष्ठाधिकार पर आधारित वंशानुगत राजतंत्र का प्रचलन बुद्ध के समय तक हो चुका था। राजा की सहायता के लिए मंत्रिपरिषद थी और कहीं-कहीं राज्य-सभा के भी उल्लेख प्राप्त होते हैं तथापि सुस्थापित परंपराओं के अनुकूल काम करते हुए भी राजा सर्वोच्च था और राज्य की स्थिति के लिए अंततः उत्तरदायी भी था। इन्हीं कथाओं में अत्याचारी और अन्यायी राजाओं के विरुद्ध जन-विद्रोह व उनकी हत्या के भी प्रसंग मिलते हैं। साथ ही राजा की शक्तिया भी अत्यंत विस्तृत थी। राजा प्रत्येक समुद्र-तट, खान, नगर, सीमा-शुल्क कार्यालय, कोषागार इत्यादि का स्वामी था और प्रत्येक विदेशी और अपराधी के विषय में निर्देश देने का अधिकारी था।

राज्य के अध्यक्ष के रूप में राजा की सहायता के लिए उच्च व निम्न पदों वाले अनेक राज्य-अधिकारियों का वर्णन भी बौद्ध साहित्य का अभिन्न अंग है जिनमें मंत्रि-परिषद के अतिरिक्त सुरक्षा अधिकारी और दूत भी सम्मिलित थे जो राजा की सुरक्षा का विशेष तौर पर ध्यान रखते थे। राज-दरबार में ब्राह्मण, श्रमण व अन्य संप्रदायों के अनुयायी भी प्रायः आते रहते थे। मंत्रिपरिषद के सदस्यों को ‘परिसोद्धन’ तथा राजा के परामर्शदाताओं को ‘तुलक’ के नाम से जाना जाता था। समकालीन साहित्य में यद्यपि राजा की सहायता के लिए लगभग 102 अधिकारियों का उल्लेख मिलता है उनमें से निम्नलिखित छह ही अधिक महत्वपूर्ण थे : सेनापति, पुरोहित, अक्खादस्सो (मुख्य न्यायाधीश), भंडागारिका (मुख्य कोषाध्यक्ष), चट्टागहोको (राज्य को सूर्य की धूप से बचाने वाले छाते को धारण करने वाला) और खगगाहोको (राज्य का खड़ग (तलवार) धारण करने वाला)।

उच्च राज्य अधिकारियों को ‘महामात्र’ अथवा ‘महामात्य’ कहा जाता था जिन्हें मंत्री, सेनानायक, न्यायाधीश, गणक अर्थात् मुख्य लेखापाल इत्यादि के

रूप में नियुक्त किया जाता था। इनके अतिरिक्त पालि ग्रंथों में अमात्यों और आयुक्तों का भी उल्लेख अनेक स्थलों पर मिलता है जो राज्य के महत्वपूर्ण पदाधिकारी थे और प्रायः ये पदाधिकारी राजा के वंश के सदस्य नहीं होते थे। इस समय के साहित्य में सुसंगठित सेना तथा कराधान प्रणाली के भी स्पष्ट वर्णन मिलते हैं।<sup>110</sup> बलिसाधक, बलिपत्तिगाहक, बलिनिगाहक, कराकार व क्षेत्रकार इत्यादि राज्य की कराधान व्यवस्था के सूचक हैं।

बलि अथवा करं का प्रमुख स्रोत भूमि थी। भू-कर वरतुतः उत्पाद में राजा के हिस्से का घोतक था जो लगभग उत्पाद का 1/6 भाग था। बुद्धकालीन राज्य भी प्रमुखतः कृषिगत सभ्यता की उपज था और उसकी मूल इकाई 'स्वशासित गांव' थे जिनके सामूहिक संगठन के ऊपर राजनीतिक व आर्थिक ढांचे खड़े किए गए थे। तथापि इस काल की प्रशासनिक व्यापकता का संकेत बौद्ध-साहित्य में उपलब्ध विवरण है जिसके अनुसार राज्य अथवा राष्ट्र अनेक प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित था—ग्राम, नगर, निगम, जनपद तथा अंततः राजधानी सहित राष्ट्र। राष्ट्र का अनेक इकाइयों में विभाजन उसके सहज और सुचारु संचालन के लिए अनिवार्य था। इकाइयों का अस्तित्व अनिवार्यतः प्रशासन के विकेंद्रीकरण तथा स्थानीकरण (localization) को दर्शाता है तथापि यह भी सत्य है कि केंद्रीय नियंत्रण कठोर था।

बुद्धकालीन राज्यव्यवस्था में दो राजनीतिक तत्वों का अद्भुत मिश्रण दिखाई पड़ता है। एक ओर तो इस समय राजतन्त्र प्रचलित राजनीतिक संस्था के रूप में प्रतिस्थापित हो रहा था जिसमें 'वंशानुगत ज्येष्ठाधिकार' के तत्व मज़बूत हो रहे थे, वहीं दूसरी ओर 'गणसंघों' के प्रति झुकाव भी उभर रहा था। मूलासर्वस्तिवाद विनय ग्रंथ में वंशानुगत विशेषधिकारों के विरुद्ध अत्यंत कठोर भावों का संकलन तथा गण के महत्वपूर्ण पदों हेतु स्वतंत्र चुनावों का प्रबल समर्थन भी मिलता है। यह उल्लेखनीय है कि इन पदों में सेनापति का उच्चतम पद भी सम्मिलित है। राइस डेविड्स (Rhys Davids) के अनुसार शाक्य एक गणतांत्रिक कुल (clan) था जिसके प्रशासनिक व न्यायिक निर्णय एक

जनसभा द्वारा किए जाते थे जिसमें एक अथवा अधिक निर्वाचित मुखिया थे जिन्हें ‘राजा’ की पदवी प्राप्त थी,<sup>111</sup> बी.जी. गोखले के अनुसार “बुद्ध के समय में राजतन्त्र प्रमुख राजनीतिक संस्था थी..... बुद्ध स्वयं जनजातीय गणतंत्रों के युग से संबद्ध थे अतः उस शासन व्यवस्था के लिए उनके हृदय में प्राकृतिक झुकाव था जिसे उन्होंने अपने संघों में पुनर्जीवित करने का प्रयास भी किया परंतु बुद्ध इतने यथार्थवादी भी थे कि उन्होंने यह तथ्य पहचान लिया था कि राजतंत्र अपने पांच जमा चुका था.... अतः उन्होंने यह घोषणा कर दी कि अराजकता की स्थिति में जाने से बचने के लिए राजतंत्र अत्यंत आवश्यक था फिर भी उन्होंने एक ‘उच्चतर नैतिकता के माध्यम’ से अतिवादी राजनीतिक सत्ता को सीमित रखने के प्रयास किए।<sup>112</sup> विविध पालि ग्रंथों में उपलब्ध संकेतकों से यह स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध के समय तक कराधान की एक विरतृत प्रणाली भी विकसित हो चुकी थी और कर को कृषक के उत्पाद में से राजा का न्याय-संगत हिस्सा माना जाता था। उसे इस आधार पर न्याय-संगत ठहराया गया था कि राजा जनता को सुरक्षा प्रदान करता है। यहां तक कि बुद्ध द्वारा संपत्ति के पांच फलों में से एक कर देने की योग्यता माना गया जो राजनीतिक व्यवस्था के रख-रखाव के उद्देश्य की पूर्ति करता था।<sup>113</sup>

बुद्धयुगीन भारत में राजनीतिक एकीकरण व विशाल साम्राज्यों की स्थापना की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। ‘जनपदीय’ जीवन से राजनीति ‘महाजनपदों’ की ओर बढ़ चुकी थी इसका प्रमाण बौद्ध-साहित्य में वर्णित लगभग 16 महाजनपदों के अस्तित्व से मिलता है। ये महाजनपद थे : काशी, कौशल, अंग, मगध और वज्जमहासंघ जिसमें आठ कुल/जनपद/संघ सम्मिलित थे, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अस्सक, अवंति, गांधार, कांबोज इत्यादि।<sup>114</sup> अधिकांश महाजनपदों में राजतंत्र प्रचलित राजनीतिक व्यवस्था थी

तथापि गणतंत्रों का अस्तित्व भी उल्लेखनीय है। ऊपर वर्णित वज्जि और मल्ल महाजनपदों के अतिरिक्त शाक्य, कोलिय, भग्ग, बुलि, कालम और मोरिय इत्यादि अन्य गणतांत्रिक राज्य थे जो शनैः-शनैः महाजनपदों की भाँति विस्तारशील मगध साम्राज्य में विलुप्त हो गए।

बुद्धकालीन ग्रामीण समुदाय स्वायत्त थे तथा ग्राम-मुखिया अथवा प्रमुख ग्राम-विकास के कार्यों की देख-रेख के लिए उत्तरदायी था। गांव के अधिकांश निर्णय ग्रामीण परिषद द्वारा लिए जाते थे यद्यपि मुखिया राजा व उसके अधिकारियों के संपर्क में रहता था। गणतांत्रिक भावना के प्रमाण जातक कथाओं में उल्लिखित इस तथ्य में भी स्पष्टतः देखे जा सकते हैं कि अनेकशः ग्रामीण स्वयं मिलकर सभागृहों, विश्राम गृहों, मार्गों, पुलों, इत्यादि का निर्माण कर लेते थे।<sup>115</sup> मैगरथनीज़ ने अपने वर्णन में इस ‘आश्चर्यजनक तथ्य’ का उल्लेख किया है कि सब भारतीय स्वतंत्र थे उनमें से एक भी दास नहीं था।<sup>116</sup> इसी पृष्ठभूमि में यह तथ्य प्रतीत होता है कि बौद्ध वाङ्मय में इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि शाक्य राज्य के छोटे-छोटे कस्बों और ग्रामों में भी पंचायतें होती थीं जिनमें संभवतः सब वर्ग के लोगों को प्रवेश और शासनाधिकार मिलता था।<sup>117</sup>

बुद्धकालीन साहित्य में गणतांत्रिक शासन-प्रणाली का उल्लेख प्रायः मिलता है जिनमें कोई वंशानुगत शासक नहीं था, राज्य की सत्ता का निवास जन-सभा में था जिनमें से प्रत्येक स्वयं को राजा पुकारता था।<sup>118</sup> बौद्ध धर्म ग्रंथ मञ्ज्ञम निकाय में वज्जि तथा मल्ल का गणों अथवा संघों के रूप में उल्लेख मिलता है जिसका शासन किसी एक सम्प्रभु के हाथ में न होकर निर्गमित संघ में था। इसी प्रकार महावास्तु में 84 हजार लिच्छवी ‘राजाओं’ का उल्लेख है जो वैशाली में रहते थे। राजा से तात्पर्य यहां शासक नहीं लिया जा सकता परंतु यह आशय अवश्य स्पष्ट होता है कि वे सब स्वतंत्र और शक्तिशाली थे और मिल कर संप्रभु संघ का निर्माण करते थे। विविध जातक कथाओं में वैशाली के 7707 राजाओं

का भी उल्लेख मिलता है तथा पालि-ग्रंथों में ऐसे अनेक उद्धरण उपलब्ध हैं जहाँ प्रत्येक लिच्छवी नागरिक को राजा कहा गया है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में यह स्पष्ट किया गया है कि ऐसा केवल लिच्छवी ही नहीं अपितु माद्र, वृज्जि इत्यादि अनेक अन्य कुलों के संदर्भ में भी सत्य था।

बौद्ध द्वारा संघीय अथवा गणतांत्रिक व्यवस्था की प्रशंसा का संकेत उनके आनंद के साथ वार्तालाप में मिलता है जहाँ वे अजातशत्रु द्वारा वृज्जि गण के पास अपने प्रधानमंत्री के भेजे जाने का उल्लेख करते हुए यह वर्णन भी देते हैं कि ‘वृज्जि अपनी खुली जन-सभा में इस प्रकार के मामले पर निर्णय लेते हैं और जब तक वे ऐसा करते रहेंगे, वे निरंतर प्रगति करेंगे’।<sup>119</sup> ये जन-सभाएं सभागृह में होती थीं जिन्हें ‘सन्थागांर’ कहा जाता था। सभा की कार्यप्रणाली के विषय में बौद्ध संघ की कार्य-प्रणाली प्रकाश डालती है जिसके अनुसार प्रथम सभापति अर्थात् आसन-पन्नापाक का चयन किया जाता था जो वरीयता के आधार पर सदस्यों के बैठने की व्यवस्था करता था। प्रस्ताव का प्रस्तावक पहले सभा के सदस्यों के सम्मुख प्रस्ताव की घोषणा करता था, उस पर सदस्यों की स्वीकृति के विषय में तीन बार प्रश्न रखा जाता था, जिसके उपरांत प्रस्ताव स्वीकृत माना जाता था। विवादास्पद विषयों पर वाद-विवाद तथा संघर्ष भी होता था, तब मतों के द्वारा बहुमत से निर्णय लिया जाता था।<sup>120</sup> बहुमत से निर्णय हेतु मत-पत्रों अथवा शलाकों का प्रयोग तथा शलाक गहपकों अर्थात् मतदान-अधिकारी की नियुक्ति, कोरम की व्यवस्था, अनुपस्थित सदस्य के मत संग्रह इत्यादि इस तथ्य की ओर संकेत करते हैं कि इन गणराज्यों में जन-सहभागिता के व्यवस्थित तौर-तरीके विकसित किए जा चुके थे।

## बौद्ध साहित्य में राजा

यद्यपि बौद्ध साहित्य राजनीति विषयक ग्रंथ नहीं है, तथापि राजाओं के कर्तव्य एवं धर्म पर बौद्ध द्वारा समय-समय पर दिए गए उपदेशों में उनके राजनीति

विषयक विचार परिलक्षित होते हैं।

बौद्ध ग्रंथों में राजा शब्द का प्रयोग ‘राजा’ के अतिरिक्त राज्य के महत्वपूर्ण पदाधिकारियों के लिए भी मिलता है।<sup>121</sup> साथ ही, राजपद के विवरण में राजा के अतिरिक्त ‘महाराजा’ एवं चक्रवर्ती राजा (चक्रवत्ति राजा) की शब्दावली का प्रयोग भी मिलता है।<sup>122</sup>

राजा की सैद्धांतिक व्याख्या बौद्ध-ग्रंथों में भी उसके प्रजा-रंजन के कार्य पर आधारित मिलती है यथा धर्मेन परे रंजेतीति खो वासेहु राजा<sup>123</sup> अर्थात् वह धर्म से दूसरों का रंजन करता था अतः वह राजा कहलाया। इसी प्रकार एक अन्य ग्रंथ में उल्लिखित है कि ‘वह क्षत्रिय जो कि महान् परोपकारी, युद्धजयी, शत्रुओं का वधकर्ता अर्थात् नाश करने वाला एवं अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने में सक्षम हो, तथा जिसका कोष धन-धान्य से परिपूर्ण हो, ‘राजा’ कहलाता है।<sup>124</sup>

राज्य के सात अवयवों— स्वामी (राजा), आमात्य, पुर, राष्ट्र, कोष, दंड और मित्र का उल्लेख बौद्ध साहित्य में भी मिलता है। इन अंगों में राजा को सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है तथापि राजा की स्थिति को मर्यादित मानते हुए यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि राजा को मनमाने ढंग से शासन चलाने की छूट नहीं थी। राजा का कार्य केवल प्रजाओं का पालन एवं अधिकारियों को दण्ड देना था। इसके अतिरिक्त वह व्यक्तियों पर कोई अधिकार नहीं रखता था। कुल मिला कर राजा जनता एवं राज्य का अमर्यादित स्वामी नहीं हो सकता था। उसकी स्थिति मात्र ‘प्रमुख’ या प्रथम न्यायाधीश की थी जिसका मुख्य कार्य शांति एवं व्यवस्था कायम रखना था।<sup>125</sup>

बौद्ध ग्रंथों में यह स्पष्टतः उल्लिखित है कि सत्तिय अर्थात् ‘क्षत्रिय’ ही राजा के पद के योग्य है क्योंकि वह चारों वर्णों में श्रेष्ठ और सबसे सशक्त

है।<sup>126</sup> साथ ही वैदिक साहित्य में वर्णित गुण व विशेषताएं यथा राजा का शारीरिक रूप से शक्ति संपन्न, सौंदर्य-युक्त, चतुर, शुद्रकर्मा, जितेंद्रिय, पराक्रमी, प्रियदर्शी किंतु अभिमानहीन, मित्रवत्सल एवं आदित्य के समान तेजवान होना इत्यादि बौद्ध ग्रंथों में भी अभिव्यक्त है किंतु बौद्ध ग्रंथ उसे दिव्य पुरुष नहीं मानते। इन ग्रंथों में यह अवश्य महत्वपूर्ण है कि राजा का जन्म एक श्रेष्ठ कुल में हुआ हो ताकि माता-पिता के अच्छे गुणों का समावेश राजा में हो सके और यह शुद्ध एवं श्रेष्ठ वंश न केवल एक पीढ़ी अपितु सात पीढ़ियों की परंपरा हो, यह और भी श्रेष्ठ माना गया।<sup>127</sup> क्योंकि निम्न कुल जैसे शिकारी, बढ़ई, मेहतर इत्यादि के कुल में जन्मा व्यक्ति राजपद प्राप्त नहीं कर सकता था। इस वर्णन से यह भी स्पष्ट होता है कि बौद्ध समाज में वर्ण व्यवस्था सुगठित हो चुकी थी तथा असमानताओं का आधार थी। तथापि राजा को वर्णव्यवस्था के पोषण का कार्य नहीं दिया गया था।

राजा के कर्तव्यों एवं मर्यादाओं का वर्णन भी बौद्ध साहित्य में उपलब्ध है जिससे राजा का प्रजारंजक स्वरूप स्पष्ट होता है यथा राजा प्रत्येक तथ्य को अच्छी तरह से समझने की क्षमता रखता हो, सभी कार्यों को सही समय (कालन्तू) पर करने की योग्यता रखता हो, व्यक्तियों के समूह को नियंत्रित एवं संतुष्ट करने की क्षमता रखता हो (परिसन्तू) अर्थात् सफलतापूर्वक उन व्यक्तियों की समस्याओं का समाधान कर सकता हो जो उसके पास पहुंचते हों। ऐसा इसलिए भी आवश्यक माना गया क्योंकि ‘राजा के शील, व्रत तथा अन्य गुणों का अनुसरण प्रेजा करती है।’<sup>128</sup> यह मान्यता बौद्ध समाज में प्रतिस्थापित हो चुकी थी।

बौद्ध-साहित्य में ‘सम्राट्’ एवं ‘अधिराज’ शब्दों के स्थान पर ‘सार्वभौम’, ‘चातुरांत’, एवं ‘चक्रवर्तिन’ शब्दों का प्रयोग राजा के एकछत्र शासन की ओर संकेत करने के लिए मिलता है। उदाहरणार्थ दीघ निकाय में सुदस्सन राजों के वर्णन में उसे ‘चातुरांत’ और ‘चक्रवर्तिन’ कहा गया है। उसने चारों समुद्रों तक

की सीमायुक्त पृथ्वी जीती थी।<sup>129</sup> बुद्ध के अनुसार चक्रवर्ती 'बत्तीस-लक्षण' युक्त होता है।<sup>130</sup> जो राजा के अन्य लक्षणों एवं गुणों के अतिरिक्त भी चार अद्भुत गुणों से युक्त होना चाहिए जो निम्न हैं (1) यदि क्षत्रिय परिषद राजा का दर्शन करने जाती है तो दर्शन से संतुष्ट हो जाती है, यदि राजा भाषण करता है तो भाषण से संतुष्ट हो जाती है और यदि चक्रवर्ती राजा चुप रहता है तो क्षत्रिय परिषद अतृप्त रहती है। यही स्थिति (2) ब्राह्मण परिषद (3) गृहपति परिषद और (4) श्रमण परिषद की होती है अर्थात् समाज के सेभी लोग चक्रवर्ती राजा से संतुष्ट रहते हैं।<sup>131</sup>

## बौद्ध युग के गणराज्य

राइस डेविड्स ने बौद्धकालीन भारत के अपने अध्ययन में यह स्पष्ट निष्कर्ष निकाला है कि उस समय भारत में अनेक स्थानों पर गणतंत्रात्मक पद्धति अस्तित्व में थी।<sup>132</sup> यदि जायसवाल के अनुरूप 'गण' का अर्थ संख्या<sup>133</sup> माना जाए तो गणतंत्र अथवा गणराज्य का अर्थ हुआ संख्या का शासन जो निश्चय ही रांजतंत्र से भिन्न और जनतंत्र के समीप है। महाभारत में गण शब्द का अर्थ स्पष्ट रूप से गणराज्य अथवा गणतंत्र के लिए किया गया है। बौद्ध साहित्य में गण का अर्थ एक ऐसी संस्था या समिति से है जिसमें सदस्यगण मिल कर तथा एकजुट होकर कार्य करते थे। यही गणराज्य का अर्थ भी है। बौद्धकाल में गण शब्द का प्रयोग जनतंत्रात्मक राज्यों के लिए होने लगा था। इस बात के भी प्रबल प्रमाण उपलब्ध हैं कि बौद्ध दर्शन के प्रारंभिक काल में अनेक स्वतंत्र जनजातियां तथा जनसमूह थे जो अपना प्रशासन या तो प्रजातांत्रिक व्यवस्था या अल्पवर्गतंत्रीय व्यवस्था के अंतर्गत चलाते थे। इन व्यवस्थाओं में शासन से संबंधित प्रश्न जन-सभाओं में रखे जाते थे जहां वाद-विवाद के पश्चात उन पर निर्णय लिया जाता था।

राइस डेविड्स शाक्य गण की प्रशासन पद्धति का वर्णन करते हुए लिखते हैं कि शाक्यों का प्रशासनिक व न्यायिक कार्य आम सभा में होता था जिसकी बैठक कपिलवस्तु में होती थी। सभा का अध्यक्ष सभापति, राजा के नाम से जाना जाता था।<sup>134</sup> इसी प्रकार के प्रशासन का दृष्टांत लिच्छवि के संदर्भ में मिलता है। बौद्धों के त्रिपिटक से स्पष्ट जानकारी मिलती है कि 'वर्तमान उत्तर प्रदेश के गोरखपुर और उत्तरी बिहार के प्रदेशों में अनेक गणतंत्र विद्यमान थे।

.... बुद्ध के काल में मल्ल, लिच्छवि, विदेह आदि राज्य गणतंत्र थे। उनके पड़ोसी मगध और कोशल के राजा उन्हें बार-बार जीतने का प्रयास करते थे, इसलिए अपनी रक्षा के लिए ये गणतंत्र अपना एक महासंघ बनाते थे।<sup>135</sup>

यद्यपि लोकतंत्र के आधुनिक अर्थ में इन राज्यों को लोकतांत्रिक अथवा गणतांत्रिक कहना सरल नहीं है तथापि एक समन्वित परिप्रेक्ष्य में यह अवश्य कहा जा सकता है कि ये शासन तंत्र राजतंत्र से भिन्न थे क्योंकि शासन सूत्र एक वंशानुगत तौर पर मनोनीत अथवा नियुक्त शासक के हाथ में न होकर एक गण, समूह या परिषद के हाथ में होता था। उदाहरणार्थ वैशाली का लिच्छवि गणराज्य जिसमें शासन का संचालन 7707 राजाओं के हाथ में था।<sup>136</sup> निश्चय ही 7707 राजा शासन नहीं कर सकते परंतु इतनी बड़ी संख्या में राजाओं का अस्तित्व इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि वैशाली एक संघ राज्य था जिसमें 7707 शासक परिवार अथवा 'सभा' के सदस्य थे जिनको समान रूप से राज्याधिकार प्राप्त थे, अर्थात् संघ का कोई भी महत्वपूर्ण निर्णय उनकी सहभागिता पर आधारित निर्णय के बिना नहीं लिया जा सकता था अतः वे सब राजा कहलाते थे।

## गणतंत्रों की शासन-संस्थाएं

बृद्धकालीन गणतंत्रों को 'अराजक राज्यों की श्रेणी में रखा जाता है परंतु उनके संविधान अथवा शासन-संगठन के विषय में विस्तृत जानकारी का अभाव है। तथापि विभिन्न काल और प्रदेशों के विविध गणतंत्रों के संबंध में यत्र-तत्र बिखरे उल्लेखों से उनके विधान और कार्य प्रणाली का एक खाका तैयार होता

है जिसके अनुसार इन गणतंत्रों की शासन-व्यवस्था सभा अथवा परिषद के माध्यम से चलाई जाती थी जो शासन से संबंधित प्रश्नों पर वाद-विवाद के पश्चात निर्णय लेने के अधिकार से युक्त थी। प्रशासकीय अधिकार मुखिया अर्थात् राजा के हाथ में होता था जो युद्ध के समय सेनापति के दायित्व का निर्वाह भी करते थे। इन गणतंत्रों के आकार भी भिन्न थे यथा मोरिय, कोलीय और शाक्य छोटे-छोटे कुछ गांवों से मिल कर बने थे जबकि लिच्छवी, यौधेय, मालव आदि गणराज्य सैकड़ों ग्रामों और दर्जनों नगरों के स्वामी थे।

जातकों में शासकों को गणशासक अर्थात् प्रजातंत्री शासक कहा गया है।<sup>137</sup> इन गणतंत्रों के शासन का सर्वोच्च अधिकार केंद्रीय समिति के हाथों में था, जिसमें बड़ी संख्या में सदस्य होते थे। उदाहरणार्थ यौधेयों की समिति में 5,000 और लिच्छवियों की समिति में 7,707 सदस्य थे।<sup>138</sup> इन सदस्यों में राजा, उपराजा, सेनापति और भांडागरिक आदि का भी उल्लेख मिलता है। वैसे शासन सत्ता 7707 सदस्यों के ही हाथ में थी, इनमें से प्रत्येक शासक (राजा) होने का अधिकारी था और उनमें से ही ऊपरवर्णित राजा, उपराजा, सभापति, उपसभापति, सेनापति और भांडागारिक बनते थे जो प्रमुख शासनाधिकारी थे। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य शासन की एक प्रमुख इकाई था। यहां विशेष तौर पर उल्लेखनीय तथ्य यह है कि प्रत्येक सदस्य अपनी वंशपरम्परा से समिति की सदस्यता का अधिकारी था और इसी स्वाभिमानवश वे अपने प्रतिनिधि भी नहीं रखते थे। गणराजाओं का भी राज्याभिषेक होता था।<sup>139</sup>

जायसवाल का मानना है कि कुछ गणतंत्रों में व्यवस्थापिका सभा के दो भाग—अमीर सभा व सामान्य सभा होते थे।<sup>140</sup> सिकंदर के साथ आए ग्रीक लेखकों ने भी कुछ गणराज्यों में वृद्धों की परिषद का उल्लेख किया। परंतु सदाशिव अल्टेकर ‘दो सभाओं’ अथवा ‘एक सभा के दो भागों’ के अस्तित्व को असंभव मानते हुए यह मत व्यक्त करते हैं “केंद्रीय सभा में सिर्फ उच्च वर्ग के लोग रहते थे, उनको अपने कुल के कारण अत्यधिक स्वाभिमान व गर्व था।

अतः वे अपने से श्रेष्ठ सभा की कल्पना कदापि सहन न करते। जिन 'वृद्धों' या 'अगुओं' की सलाह पर अंबष्टों ने सिंकंदर की अधीनता स्वीकार की वह अमीर सभा के सदस्य नहीं वरन् समाज के वयोवृद्ध और अनुभवी लोग थे।”<sup>141</sup>

## सभा का कार्य क्षेत्र/कार्य प्रणाली

इन गणतांत्रिक सभाओं में राजनैतिक, व सैनिक विषयों तथा विदेश नीति एवं संधि विग्रह आदि के कार्य तो निपटाए ही जाते थे, साथ ही कृषि तथा व्यापार संबंधी विषयों पर भी वाद-विवाद एवं विचार-विमर्श होता था।<sup>142</sup> सभा स्थल को 'संथागार' कहा जाता था और संथागारों में गोष्ठियों का भी आयोजन होता था जिनमें सामाजिक एवं धार्मिक विषयों पर चर्चा होती थी। इन अवसरों अर्थात् सामाजिक एवं धार्मिक चर्चाओं के समय सामान्यतः सभाएं शांतिपूर्ण होती थीं परंतु महत्वपूर्ण राजनैतिक विषयों पर विचार के समय ईर्ष्या-द्वेष एवं दलबुन्दी स्पष्टतः देखी जा सकती थी। बौद्धग्रंथों व महाभारत में दलबंदी का कारण पद-लोलुपता बताया गया है जो कालांश में इन सभाओं की दुर्बलता का कारण भी बना।

सदस्यों के बैठने का स्थान निर्धारित करने के लिए भी कर्मचारी नियुक्त थे। गणप्रमुख अधिवेशन के अध्यक्ष के रूप में सभा की कार्यवाही का संचालन व नियंत्रण करते थे। जरा भी पक्षपात होने पर उन्हें भारी आलोचना का सामना करना पड़ता था। सभा में किसी भी विषय से संबंधित प्रस्ताव पहले औपचारिक रूप से रखा जाता था तथा फिर उस पर वाद-विवाद होता था। सभी को प्रस्ताव पर बोलने व अपना मत प्रकट करने का समान अधिकार था। जब मतभेद दिखाई देते, तभी मत लिए जाते थे तथा बहुमत का निश्चय मान्य होता था। उदाहरणार्थ कौशलों द्वारा शाक्यों को घेर लिए जाने एवं कौशलाधिपति द्वारा दुर्ग के फैटक खोलने की चेतावनी दिए जाने पर शाक्यों की सभा की बैठक बुलाई गई। कुछ द्वार खोलने के पक्ष में थे तो कुछ विरोध में। अंततः मत-संग्रह करने पर ज्ञात

हुआ कि बहुमत समर्पण के पक्ष में है और वही निर्णय लिया गया।<sup>143</sup> आदर्श गणराज्यों में मत लेने की परिस्थिति उत्पन्न नहीं होती थी यथा लिच्छवि संघ की सभा में भी वाद-विवाद के पश्चात् वृद्धों की सलाह से निर्णय ले लिए जाते थे।<sup>144</sup> गणपूर्ति के लिए निश्चित संख्या का उल्लेख इन सभाओं की कार्यवाही संबंधी विवरणों में नहीं मिलता तथापि जिस सभासद के आने से गणपूर्ति होती थी, उसे ‘गणतिय’ या ‘संघतिय’ कहते थे तथा गणपूर्ति के लिए जो आवश्यक कार्य करता था उसे “गणपूरक” कहते थे।<sup>145</sup>

मतदान प्रत्यक्ष (वितरक) अथवा अप्रत्यक्ष (गुह्यक) होता था। कभी-कभी सदस्य मत संग्रह करने वाले के कान में अपना मत प्रकट करते थे जिसे ‘संकर्णपक’ मतदान कहते थे। बौद्ध संघों में प्रचलित मतदान पद्धति से यह ज्ञात होता है कि मतदान के पूर्व प्रत्येक सदस्य को पूर्व संकेत के अनुसार अलग-अलग रंग की “शलाकाएं” (मत-पत्र) विभिन्न मतों की अभिव्यक्ति के लिए दी जाती थी जो “शलाका ग्राहक” एकत्र करता था।<sup>146</sup> ये तथ्य, निश्चय ही विकसित प्रजातांत्रिक लक्षणों की ओर संकेत करते हैं।

गणतंत्रों में शासकीय कार्यों की देख-रेख के लिए ‘मंत्रिमंडल’ के अस्तित्व के भी संकेत मिलते हैं जिसके सदस्यों की नियुक्ति केंद्रीय सभा ही करती थी। मंत्रिमंडल में कितने मंत्री होते थे तथा मंत्रिपद के लिए कौन प्रत्याशी हो सकते थे, इस विषय में सुनिश्चित जानकारी का अभाव है तथापि अल्लेकर का मत है कि “राज्य के आकार और परंपरा के अनुसार मंत्रियों की संख्या में अंतर होता था। मल्ल राज्य के मंत्रिमंडल में केवल चार सदस्य थे, इससे बड़े लिच्छवि राज्य में नौ मंत्री थे..... लिच्छवि विदेह ‘राज्य संघ’ की मंत्रिपरिषद में 18 सदस्य थे।”<sup>147</sup> इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन गणतंत्रों में मंत्रिमंडल के सदस्यों की संख्या 4 से 20 तक रहती थी।

मंत्रिमंडल का प्रधान/प्रमुख गणाध्यक्ष अथवा राजा होता था जो सभा का भी अध्यक्ष अथवा सभापति होता था। उसका मुख्य कार्य शासन कार्य की देखरेख के साथ ही गण की एकता को बनाए रखना तथा झगड़ों का निवारण करना था। प्रत्येक विभागाध्यक्ष के अधीन विभिन्न श्रेणी के अधिकारी काम करते थे। श्रेणियों की विविधता राज्यों के आकार पर निर्भर करती थी यथा शाक्य, कौलिय इत्यादि छोटे-छोटे राज्यों के अधीनस्थ अधिकारी सीधे विभागाध्यक्ष से संबंध रखते थे जबकि बड़े राज्यों में अनेक श्रेणियां उनके मध्य होती थीं।

## न्यायिक व्यवस्था

लिच्छवि गण से संबंधित जानकारी में उपलब्ध वहां की न्यायिक व्यवस्था व न्यायिक प्रक्रिया संबंधी जानकारी से गणराज्यों की न्याय-संबंधी संस्थाओं के विषय में जानकारी भी प्राप्त होती है। यद्यपि राजा ही सर्वप्रधान न्यायकर्ता होता था, तो भी न्याय हेतु एक अलग विभाग का उल्लेख मिलता है जिसका एक मंत्री होता था। उसके अधीन ‘वोहारिक’, ‘सुत्तधर’ व ‘अष्टकुलक’ इत्यादि न्यायालयों की शृंखलाएं भी थीं जिनकी न्याय-प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका थी।<sup>148</sup> जातक ‘अट्ठकथा’ से विदित होता है कि अपराधी न्यायिक परीक्षा के लिए पहले ‘विनिच्चय महामत्त’ नामक अधिकारी के पास भेजा जाता था, यहां मुकदमों की प्रारंभिक जांच की जाती थी। यदि वे अपराधी को निरपराध पाते तो उसे मुक्त कर देते थे किंतु यदि उनके मत में वह अपराधी होता तो स्वयं उसे दंड नहीं दे सकते थे। इसके लिए उन्हें उसे ‘वोहारिक’ यानी उच्चतर न्यायालय में भेजना पड़ता था। इनमें न्यायकर्ता वोहारिक अर्थात् व्यावहारिक कानून के ज्ञाता होते थे। यहां भी दोषी सिद्ध होने पर अभियुक्त को अगले उच्चतर न्यायालय- ‘सुत्तधर’ (सूत्रधर) भेजा जाता था। यहां के न्यायाधीश सूत्रधर अर्थात् व्यवहार शास्त्र आचार्य कहलाते थे। यहां भी दोषी सिद्ध होने पर अपराधी “अष्टकुलक” अर्थात् आठ सदस्यों के न्यायालय में अपील कर सकता था। ऊपरवर्णित सभी न्यायालय अपने से नीचे वाले न्यायालयों से बड़े हुआ करते थे। इनमें से कोई भी अपराधी/अभियुक्त को निर्दोष सिद्ध कर उसे मुक्त करने का अधिकारी था परंतु अभियुक्त को दंड तभी

दिया जा सकता था जब संपूर्ण सभा भी उस पर विचार कर लेती और राजा, उपराजा तथा सेनापति तीनों अलग-अलग और एकमत होकर दंड की स्वीकृति दे देते। इस प्रकार गणराज्यों की न्यायप्रक्रिया भी एक विकसित सभ्यता तथा प्रत्येक ‘नागरिक’ की महत्ता की ओर स्पष्ट संकेत करती है।

‘महापरिनिष्वानं सुत्तंतं’ में वज्जि संघ की कार्यप्रणाली के विषय में बुद्ध के उपदेश एक लोकतांत्रिक संविधान की सफलता हेतु अनिवार्य परिस्थितियों का स्पष्ट वर्णन तथा वौद्धकालीन गणराज्यों के सामान्य स्वभाव का परिचायक प्रतीत होते हैं जिसके अनुसार आदर्श गणराज्य वह है जहां जल्दी-जल्दी और पूरी-पूरी जनसभाएं होती हैं; गणराज्य के लोग एकमत होकर उन्नति हेतु राज्य के प्रति कर्तव्यों का पालन करते हैं; पूर्व-प्रचलित तथा स्थापित नियमों के अनुसार कार्य करते हैं, वृद्धों का आदर-सत्कार और मान करते हैं, उनकी बात सुनना अपना कर्तव्य समझते हैं, उनकी आज्ञाओं का पालन करते हैं; अपने समाज की स्त्रियों और बालिकाओं के प्रति बल प्रयोग नहीं करते; अपने धर्म में दृढ़ निष्ठा रखते हैं; तथा अपने अर्हतों का उचित रक्षण और पालन करते हैं”।<sup>149</sup>

वैदिक व वौद्धकालीन राज्य संस्थाओं को यदि हम पाश्चात्य विद्वानों के आधार पर वर्गीकृत करना चाहें तो हेनरी क्लासेन द्वारा की गई विशिष्टताओं को आधार माना जा सकता है जिन्होंने प्रारंभिक राज्य की निम्नलिखित विशेषताएं बताई हैं :

1. राज्य के उदय के लिए इतनी जनसंख्या आवश्यक है कि उसमें सामाजिक स्तरीकरण और व्यावसायिक विशिष्टीकरण संभव हो सके।
2. ऐसी स्थिति भी आवश्यक है जिसमें नागरिकता का निर्णय वंश या जनजाति की सदस्यता के आधार पर न होकर निवास और जन्म के आधार पर हो सके।
3. केंद्रीय नियंत्रण सरकार के हाथों में हो जिसे बल प्रयोग अथवा शक्ति के द्वारा कानून और व्यवस्था बनाए रखने का अधिकार प्राप्त हो।
4. कम से कम तथ्यतः राज्य स्वतंत्र होता है तथा उसे पार्थक्य रोकने और बाहरी खतरों का सामना करने की क्षमता व अधिकार प्राप्त होते हैं।

5. जनसंख्या में पर्याप्त स्तरीकरण हो जिससे उभरते हुए शासक और शासित वर्गों में अंतर स्पष्ट हो सके।
6. उत्पादकता इतनी अधिक हो कि नियमित अधिशेष सुनिश्चित रहे और इसका उत्पादन राज्य संयंत्र के अनुरक्षण के लिए किया जा सके।
7. राज्य की एक विचारधारा हो जो शासक वर्ग की वैधता का आधार बन सके।<sup>150</sup>

क्लासेन के उक्त विचारों की तुलना यदि प्राचीन भारतीय साहित्य में वर्णित राज्य की संरचना और कार्यों से की जाए तो जनसंख्या क्षेत्र, स्तरीकरण व विभेदीकरण, केंद्रीय नियंत्रण बल और अधिशेष अथवा कराधान इत्यादि समान रूप से देखी जा सकती हैं बल्कि क्लासेन की अवधारणा में दुर्ग, अमात्य और मित्र जैसी संकल्पनाएं सम्मिलित नहीं हैं।<sup>151</sup> भारतीय चिंतकों ने राजा के लक्ष्य और उद्देश्यों पर विचार किया है जो राज्य की विचारधारा का स्थान सरलता से ले सकते हैं।

---